नियमसार, १२२ वाँ कलश है।

त्यक्त्वा विभावमखिलं व्यवहारमार्ग-
रत्नत्रयं च मति-मान्निज-तत्त्व-वेदी।
शुद्धात्म-तत्त्व-नियतं निज-बोध-मेकं,
श्रद्धान-मन्य-दपरं चरणं प्रपेदे।।१२२।।

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव का श्लोक है। कहते हैं कि,

[श्लोकार्थ :] समस्त विभाव को... आहाहा! आत्मा का ध्यान करना हो और सम्यग्दर्शन करना हो, उसे समस्त विभाव—हिंसा, झूठ, सत्य-असत्य आदि समस्त जो विकल्प हैं, उन्हें छोड़कर। तदुपरान्त **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर...** आहाहा! वे यह कहते हैं कि व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होता है। यहाँ कहते हैं कि छोड़कर होता है। इतना अन्तर है। रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय, वह व्यवहाररत्नत्रय के त्याग से होता है। उसकी रुचि और उसका आश्रय छोड़े तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निज द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! कठिन काम।

चैतन्य पूरा तत्त्व है, जिसकी अनन्त शक्ति है। प्रत्येक शक्ति की एक पर्याय है। पर्याय में विकल्प उठे, उन्हें तो छोड़; परन्तु व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम, शास्त्र की ओर का ज्ञान, विकल्पज्ञान... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर। व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है - ऐसा नहीं कहा। आहाहा! अभी पहले व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे निश्चयश्रद्धा किस प्रकार होगी? व्यवहार से निश्चय होता है (-ऐसा माने), उसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय और विभाव। पहले साधारण विभाव कहा। संसार सम्बन्धी विकल्प; पश्चात् मोक्षमार्ग का रत्नत्रय व्यवहार, जिसे मोक्षमार्ग व्यवहार कहते हैं, उसे भी छोड़कर। आहाहा!

अकेला भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर **निज तत्त्ववेदी...** छोड़कर करना क्या? **निज तत्त्ववेदी...** निज आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, ऐसा जो तत्त्व, उसका वेदी—अनुभव करनेवाला, उसका अनुभव करनेवाला-जाननेवाला। आहाहा! यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्राप्त करने की पद्धति है। आहाहा! अभी व्यवहार से होता है.. व्यवहार से होता है—ऐसे लेख आते हैं। जयसेनाचार्य में बहुत आते हैं; इसलिए वह टीका पसंद करते हैं। व्यवहाररत्नत्रय साधक है, निश्चय साध्य है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग से भिन्न पड़कर अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे, तब उसे राग से भिन्न पड़ा, तब उसके राग को व्यवहारसाधन का आरोप दिया जाता है। व्यवहारसाधन का ज्ञान करने के लिए है। आहाहा! जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा!

(समयसार की) १२वीं गाथा में यह कहा। व्यवहाररत्नत्रय आता है - होता है, परन्तु वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदर किया हुआ प्रयोजनवान नहीं। अब ऐसे निचली श्रेणी में रहे हुए, उन्हें यह बात कहो, उसकी अपेक्षा पहले रीतिसर मार्ग में चढ़ावे। परन्तु (भाई!) दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। व्यवहार की चाहे जितनी शुद्धि करे; व्यवहार श्रद्धा की,ज्ञान की, चारित्र की चाहे जितनी सन्धि करे, परन्तु वह तो बन्ध का ही कारण है। वह शुद्धि है ही नहीं और उस अशुद्धि के कारण से आत्मा का आश्रय (होता है-ऐसा बनता नहीं)। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय का आश्रय पर है और निश्चयरत्नत्रय का आश्रय स्व है। दोनों के आश्रय में अन्तर है। आहाहा! व्यवहार पराश्रय है; निश्चय स्वाश्रय है। - यह तो सिद्धान्त है न? व्यवहार पर-आश्रय है; निश्चय स्व-आश्रय है, यह पहला सिद्धान्त है। व्यवहाररत्नत्रय में पर का आश्रय है। पर के आश्रय में तो बन्ध का कारण है। भले पुण्य बन्ध न हो, परन्तु वह बन्धन ही है। आहाहा! यह बात कठिन पड़ती है।

सोनगढ़ के नाम से (लोग) निश्चयाभास एकान्त है-ऐसा कहते हैं। यह तो आ गया, ऐसे व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर। परन्तु व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चय होता है, सीधे निश्चय हो जाता होगा? आहाहा! सीधे क्या, वह सीधे ही है। पूरा सत् पड़ा है। पूर्णानन्द का नाथ है, उसके सन्मुख होना है। पाधरो.. पाधरो समझे? सीधा, सीधा। अन्दर आत्मा आनन्द-सच्चिदानन्द प्रभु, अकेला ज्ञान और आनन्द का दल, सदा, सर्वदा एकरूप रहनेवाला है। उस तत्त्व को कुछ आँच नहीं; उसे आवरण नहीं, अल्पता नहीं, विपरीतता नहीं, उसे व्यवहार का सम्बन्ध नहीं। ऐसा जो तत्त्व भगवान आत्मा है, उसका सीधा आश्रय लेने की बात है। पाधरो अर्थात् सीधा। आहाहा! कठिन पड़े यह। यह अमृतचन्द्राचार्य नहीं (कहते), यह तो पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं परन्तु यह तो मुनि भी ऐसा कहते हैं कि भाई! विभाव को छोड़कर, स्वभाव से विरुद्ध विकल्पों को छोड़कर, व्यवहाररत्नत्रय को भी छोड़कर। आहाहा!

देव-गुरु और शास्त्र ऐसा कहे, देव-गुरु और शास्त्र ऐसा कहे - हमारी ओर का भी आश्रय छोड़कर। आहाहा! वस्तु तो देखो! उपदेश कहनेवाला ऐसा कहे - हमारा भी आश्रय छोड़कर; तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव दिव्यध्वनि में ऐसा कहते हैं कि हमारा भी आश्रय है, तब तक तुझे राग-दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! मोक्षपाहुड़

१६वीं गाथा। '**परदव्वादो दुग्गई**' - ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं। आहाहा! मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा में स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गई**' - यह व्यवहाररत्नत्रय है, वह परद्रव्य के आश्रय से है। वास्तव में वह परद्रव्य है। निश्चय से तो वह परद्रव्य है। आहाहा!

नियमसार में तो ज्ञान की निर्मल समकित पर्याय को भी परद्रव्य कहा है, क्योंकि उसके आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती, तो यह तो (रागादि तो) बन्ध का कारण है। जो अबन्ध का कारण और मोक्षमार्ग (है), उसे भी परद्रव्य कहकर उसका आश्रय छुड़ाया है। पर्याय का आश्रय छुड़ाया है और द्रव्य का आश्रय कराया है; तो यह तो व्यवहाररत्नत्रय है, इसे तो छोड़। आहाहा! समेट दे। लम्बा होकर एकपना छोड़कर अनेकपने में पड़ा है। एकरूप वस्तु है, उसे छोड़कर अनेकपने में ऐसे चौड़ा होकर पड़ा है। यह विकल्प... यह विकल्प... यह और यह... आहाहा! गजब!

उसमें पैसेवाले का मुँह देखा। आहाहा! तब मुम्बई। आहाहा! उसे मानो कि ऐसा आहा! हम पैसेवाले। करोड़ों रुपये, २०-२० लाख की मोटरें। आहाहा! लोगों को क्या हो? दूसरे को कहे परन्तु कुछ धर्म करो न! करते हैं एक घण्टे पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं। ऐसा उत्तर दिया। किसी ने पूछा था तो कहे, हम भगवान की पूजा करते हैं, माला करते हैं, भक्ति करते हैं। अरे..! बापू! एक घण्टे करता है, वह तो पराश्रितभाव है। तेईस घण्टे पराश्रितभाव पाप और एक घण्टे पराश्रित पुण्य, वह तेरा कहाँ तुलना में आयेगा? आहाहा! ऐरन की चोरी और सुई का दान। कठिन काम, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, मूल में से सब उखाड़ दे। गुण-गुणी के भेद का विकल्प, विभाव छोड़, क्योंकि वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर। यह शब्द कोई गजब है! कम बात है? बेधड़क मुनियों को - दिगम्बर सन्तों को समाज की दरकार नहीं कि समाज इसमें क्या मानेगी? पुण्य-पाप के अधिकार में अन्त में तो व्यवहाररत्नत्रय के पुण्य को भी पाप कहा है। व्यवहाररत्नत्रय के पुण्य को पाप कहा है, क्योंकि स्वरूप जो आनन्दस्वरूप वीतराग, उसमें से पतित होता है, च्युत हो जाता है। भले शुभ हो, परन्तु स्वरूप में से च्युत हो जाता है, वह पाप है। व्यवहाररत्नत्रय पाप है। ऐसा कठिन काम। आहाहा!

निचली श्रेणी के लोगों को कुछ चढ़ने का रास्ता, कुछ सीढ़ी होना चाहिए। ऊँचे-

ऊँचे सोपान चढ़ने की अपेक्षा धीरे-धीरे (आगे बढ़े)। वह धीरे कहो या उतावल से कहो या जो कुछ वह यह एक ही है। व्यवहाररत्नत्रय और विभाव के विकल्प छोड़ना, यह एक ही शुरुआत है। इसकी शुरुआत ही यह है। इससे दूसरी कुछ भी किसी बात का सहारा ले, वह सब उसमें मिथ्यात्व है। उससे लाभ होगा, ऐसा माने, वह मिथ्यात्व है। पर के सहारे से, व्यवहाररत्नत्रय से, देव-गुरु की भक्ति के भाव से, देव-गुरु की उत्तम उल्लसित भक्ति के वीर्य से आत्मा को कुछ भी लाभ होगा, (ऐसा मानना) वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

इसलिए कहा, **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर निजतत्त्ववेदी...** वह सब पर था। व्यवहाररत्नत्रय और व्यवहार, वह सब पर था। आहाहा! **निजतत्त्ववेदी...** निज अर्थात् अपना तत्त्व जो ज्ञान और आनन्द, उसका वेदन करनेवाला... आहाहा! **(निज आत्मतत्त्व को जाननेवाला-अनुभव करनेवाला) मतिमान...** उसे मतिमान कहा है। वह बुद्धिवाला है, वह पण्डित है, वह प्रवीण है। आहाहा! विचक्षण कहा है। आहाहा! जिसने चैतन्यस्वरूप को पकड़ा है, विकल्प को छोड़कर (स्वरूप को पकड़ा है), उसे विचक्षण और पण्डित कहा है। भले ज्ञान थोड़ा हो। आहाहा! मूल पहले श्रद्धा में आगे बढ़ना। शुद्धि श्रद्धा, दर्शनशुद्धि की यहाँ बात है। दर्शनशुद्धि बिना ज्ञान की और चारित्र की शुद्धि नहीं हो सकती। आहाहा!

ऐसा **निजतत्त्ववेदी मतिमान पुरुष...** मतिमान पुरुष। व्यवहार में रुकता था, वह कुबुद्धि थी। आहाहा! वह मतिमान नहीं। उस व्यवहार को छोड़कर अन्तर में निजवेदन में आवे, वह मतिमान है। वह भले बुद्धि थोड़ी हो, ज्ञान थोड़ा हो तो भी वह मतिमान है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। **मतिमान पुरुष शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत...** शुद्ध आत्मतत्त्व जो निर्मलानन्द त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, त्रिकाली निर्मल निरावरण, अखण्ड एक स्वरूप प्रभु, शुद्धपारिणामिक परमभाव तत्त्व, ऐसा निजद्रव्य। ऐसे **आत्मतत्त्व में नियत...** वह शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत है। निश्चय अर्थात् परायण.. आहाहा! व्यवहार को छोड़कर निश्चय में परायण, निजतत्त्व में परायण। यहाँ से पर को छोड़कर निजतत्त्व में परायण। आहाहा! विधि की खबर नहीं होती। पहले क्रिया करो, पहले यह करो, फिर समकित होगा। कहो, शीरा (हलुवा) बनाना हो, शीरा समझते हो? हलुवा। उसे पहले पानी में आटे को सेंको,

फिर उसमें घी डालो। तेरे तीनों जाएँगे। पानी, आटा और गुड़ सब तीनों जाएँगे, हलुवा-बलुवा नहीं होगा। उसकी यह विधि ही नहीं है। पहले आटे को घी में सेंकना चाहिए। भले आटा घी पी जाए। उसके लिए तो हलुवा है। आटा घी पी जाए, पश्चात् गुड़ और शक्कर का पानी डाले तो हलुवा होता है। इसी प्रकार प्रथम सम्यग्दर्शन ज्ञान करे, पश्चात् चारित्र करे तो रमणता होती है। आहाहा! ऐसा काम है।

अस्ति तत्त्व है या नहीं? प्रभु! तू है, ऐसा मान रहा है। यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. यह है.. परन्तु वह 'यह है... यह है... यह है... यह है...' उसे मान रहा है, वह माननेवाला है या नहीं? और यह है... यह है.. उससे माननेवाला भिन्न है या नहीं? आहाहा! स्पर्श किये बिना, उसे छुए बिना उसे जानता है। आहाहा! परद्रव्य को स्पर्श नहीं करता और वह वस्तु है, घी है, गुड़ है, शक्कर है, पकवान है, कपड़े हैं, वस्त्र हैं, गहने हैं, पैसे हैं, (उन्हें मानता है परन्तु जाननेवाले को नहीं मानता।)। आहाहा!

ऐसा चैतन्य हीरा जो मुख्यरूप से विराजता है, उसे जाननेवाला शुद्धात्मवेदी, **ऐसा जो एक निजज्ञान,...** क्या कहते हैं? तीन बोल लेना है न? ऐसा जो आत्मा तत्त्ववेदी, आत्मतत्त्व में नियत अर्थात् परायण **ऐसा जो एक निजज्ञान,...** निजज्ञान। शास्त्रज्ञान या उस (परलक्ष्यी) ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! एक निजज्ञान... निजज्ञान। **दूसरा (निज) श्रद्धान**... यह निज श्रद्धान-अपना श्रद्धान। आहाहा! **और फिर दूसरा चारित्र, उसका आश्रय करता है।** श्रद्धा को यहाँ साथ में डाला है। **निजज्ञान, दूसरा श्रद्धान और फिर दूसरा चारित्र...** ऐसे तीन कहे न। **एक निजज्ञान, दूसरा श्रद्धान और फिर दूसरा चारित्र...** आहाहा! पूर्ण तत्त्वस्वरूप की वेदन से श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र। उस व्यवहाररत्नत्रय के सामने तीन रखे हैं। **उसका आश्रय करता है।** यह चारित्र उसका-पर्याय का आश्रय करता है। उसका (राग का) आश्रय नहीं करता, इसलिए आश्रय करता है (ऐसा कहा है)। करता है द्रव्य का आश्रय, परन्तु द्रव्य का आश्रय करने पर, पर का आश्रय नहीं करता, इसलिए इसका आश्रय करता है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

पूरे आत्मा को बाहर से समेट लिया। आहाहा! ऐसा नहीं कहा? हे प्रभु! तेरे नयजाल इन्द्रजाल है। आहाहा! एक ओर अनेक विकल्पों की बातें करे, दूसरी ओर आत्मा नय और निक्षेप तथा व्यवहार और नय के विकल्प की बातें करे, तीसरी बात ध्यानावली—

ध्यान की श्रेणी-धारा निर्मल धारा... आहाहा! जो निश्चय को पकड़कर धारा जो निश्चय हो वह। प्रभु! ये तीनों में अन्दर में कहाँ है? आहाहा! प्रभु! तेरे नय इन्द्रजाल हैं। विस्तार करने लगे, तब यहाँ तक (करे)। आहाहा! दूसरी वस्तु का, नय का, दूसरे द्रव्य के आश्रय के विकल्प का, नय का और ध्यानावलि को समेटने लगे तो सबमें से समेटकर अकेला आत्मा। एक ही आत्मा आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा!

यह संसार के रस में चढ़ गये हों उन्हें कठिन पड़ता है। जिसे एक दूसरा रस चढ़ गया, उसे यह रस चढ़ना बहुत कठिन। आहाहा! जिसे राग के विकल्प का भी रस चढ़ा है, बाहर की चीज़ की विस्मयता और अधिकता... आहाहा! पचास-पचास लाख की मोटरें, उनमें ऐसे बैठा हो। और... आहाहा! ...आहाहा! मान चढ़ जाता है या नहीं वहाँ? हम कैसे वैभववाले हैं! कितने साधन, कैसे साधन पैसे से प्राप्त किये हैं! आहाहा! उस मोटर में काँच को ऐसा करना पड़े, उस मोटर में ऐसा न करना पड़े। एक ऐसे दबावे वहाँ तो काँच ऊँचा हो जाए। सब प्रकार ही अलग। आहाहा! इस बाहर की चमक में, वैभव में मोहित होकर पड़ा है। अर र! उसका योगफल क्या आयेगा? बापू! करने का फल तो आयेगा या नहीं? आहाहा! बाहर में दुनिया सर्वत्र महिमा करे, ओहो! ऐसा किया, गजब किया, ऐसा किया, वैसा किया।

एक भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका चारित्र, एक ही बात है। उसका आश्रय करे, बस। आहाहा! यह करना है।

गाथा-९२

उत्तमअट्ठं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं।।९२।।

उत्तमार्थ आत्मा तस्मिन् स्थिता घ्नन्ति मुनिवराः कर्म।
तस्मात्तु ध्यान-मेव हि उत्तमार्थस्य प्रतिक्रमणम्।।९२।।

अत्र निश्चयोत्तमार्थप्रतिक्रमणस्वरूपमुक्तम्। इह हि जिनेश्वरमार्गे मुनीनां सल्लेखनासमये हि द्विचत्वारिन्शद्धिराचार्यैर्दत्तोत्तमार्थप्रतिक्रमणाभिधानेन देहत्यागो धर्मो व्यवहारेण। निश्चयेन नवार्थेषूत्तमार्थो ह्यात्मा; तस्मिन् सच्चिदानन्दमयकारणसमयसारस्वरूपे तिष्ठन्ति ये तपोधनास्ते नित्यमरणभीरवः, अत एव कर्मविनाशं कुर्वन्ति।

तस्मादध्यात्मभाषयोक्तभेदकरणध्यानध्येयविकल्पविरहितनिरवशेषेणान्तर्मुखाकार-सकलेन्द्रियागोचरनिश्चयपरमशुक्लध्यानमेव निश्चयोत्तमार्थप्रतिक्रमणमित्यवबोद्धव्यम्।

किञ्च, निश्चयोत्तमार्थप्रतिक्रमणं स्वात्माश्रयनिश्चयधर्मशुक्लध्यानमयत्वादमृत-कुम्भस्वरूपं भवति, व्यवहारोत्तमार्थप्रतिक्रमणं व्यवहारधर्मध्यानमयत्वाद्विषकुम्भस्वरूपं भवति।

तथा चोक्तं समयसारे ह्न

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो।।

तथा चोक्तं समयसारव्याख्यायां ह्न

(वसंततिलका)

यत्र प्रतिक्रमण-मेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः।।

तथाहि ह्न

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का ॥९२॥

अन्वयार्थ :—[उत्तमार्थः] उत्तमार्थ (-उत्तम पदार्थ) [आत्मा] आत्मा है; [तस्मिन् स्थिताः] उसमें स्थित [मुनिवराः] मुनिवर [कर्मघ्नन्ति] कर्म का घात करते हैं। [तस्मात् तु] इसलिए [ध्यानम् एव] ध्यान ही [हि] वास्तव में [उत्तमार्थस्य] उत्तमार्थ का [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण है।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है।

जिनेश्वर के मार्ग में मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण, देहत्याग व्यवहार से धर्म है। निश्चय से-नव अर्थों में उत्तम अर्थ आत्मा है; सच्चिदानन्दमय कारणसमयसारस्वरूप ऐसे उस आत्मा में जो तपोधन स्थित रहते हैं, वे तपोधन नित्य मरणभीरु हैं; इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं। इसलिए अध्यात्मभाषा में, पूर्वोक्त *भेदकरण रहित, ध्यान और ध्येय के विकल्प रहित, निरवशेषरूप से अंतर्मुख जिसका आकार है, ऐसा और सकल इन्द्रियों से अगोचर निश्चय-परमशुक्लध्यान ही निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, ऐसा जानना।

और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानमय होने से अमृतकुम्भस्वरूप है; व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है।

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री समयसार में (३०६ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण जो परिहार निन्दा शुद्धि है।
निवृत्ति गर्हा धारणा ये अष्टविध विषकुम्भ हैं ॥

[गाथार्थ :] [१]प्रतिक्रमण, [२]प्रतिसरण, [३]परिहार, [४]धारणा, [५]निवृत्ति, [६]निन्दा, [७]गर्हा और [८]शुद्धि—इन आठ प्रकार का विषकुम्भ है।

---

* भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना, वह।

१. प्रतिक्रमण=किये हुए दोषों का निराकरण करना। २. प्रतिसरण=सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा। ३. परिहार=मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण। ४. धारणा=पंच नमस्कारादि मन्त्र, प्रतिभा आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना। ५. निवृत्ति=बाह्य विषयकषायादि इच्छा में वर्तते हुए चित्त को मोड़ना। ६. निन्दा=आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। ७. गर्हा=गुरुसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। ८. शुद्धि=दोष हो जाने पर प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि करना।

और इसी प्रकार श्री समयसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में (१८९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:

(हरिगीतिका)

प्रतिक्रमण को विषरूप में करते प्ररूपित है जहाँ।
अप्रतिक्रमण किस तरह अमृत हो सकेगा तब वहाँ॥
फिर क्यों प्रमादी हो रहे जन अधोमुख गिरते हुए।
क्यों निष्प्रमादी नहीं होते ऊर्ध्वमुख चढ़ते हुए॥

[श्लोकार्थ :] (अरे! भाई,) जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है, वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँ से होगा ? (अर्थात् नहीं हो सकता।) तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं ? अप्रमादी होते हुए ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते ?

गाथा-९२ पर प्रवचन

९२ गाथा।

उत्तमअट्ठं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं।।९२।।

आहाहा! यह उत्तम प्रतिक्रमण।

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का॥९२॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में), निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है। सच्चा उत्तम पदार्थ का प्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है। **जिनेश्वर के मार्ग में...** आहाहा! त्रिलोकनाथ वीतराग के मार्ग में **मुनियों की सल्लेखना के समय,...** आहाहा! सल्लेखना की बात ली है। अन्त में। **मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा,...** उनके द्वारा जैसे उत्तमार्थप्रतिक्रमण है। **ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थप्रतिक्रमण है,...** ब्यालीस आचार्यों ने यह स्वीकारा है। उनके पास जाकर अब मुझे... सल्लेखना करनी है। कि मैं योग्य हूँ।.... आहाहा!

मुमुक्षु : वह काल कैसा होगा कि जब ब्यालीस आचार्य थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अच्छा। आचार्य भी अच्छे-सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी। उस समय की बात करते हैं न? कुन्दकुन्दाचार्य के समय की बात है न? स्वयं थे, तब बहुत आचार्य थे, मुनि थे, सच्चे सन्त थे।

मुमुक्षु : पद्मप्रभमलधारिदेव के समय भी ब्यालीस आचार्य थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह टीका की है।

उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण,... अर्थात् क्या? कि जिस मुनि को संथारा करना हो, देह छोड़ने का प्रसंग (हो), वह स्वयं छद्मस्थ है, अकेला है, कदाचित् उतावली हो जाए तो ब्यालीस आचार्य, गम्भीर आचार्य, गहरे रहस्य के जाननेवालों के पास जाकर, जैसे डॉक्टर के पास जाकर शरीर की जाँच करते हैं न? कि भाई! शरीर की स्थिति कैसी है? कहे, बराबर अच्छी है, जाओ। ऐसे आचार्य कहते हैं, बराबर है। तुम्हारा सल्लेखना लेने का समय तुम्हें आ गया है। तुम्हारी योग्यता है। आहाहा! ब्यालीस आचार्य। भाव कैसा होगा? महा-आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य के समय में और इन पद्मप्रभमलधारिदेव के समय में।

मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थ-प्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण,... वह आचार्यों ने दिया। दिया अर्थात् कहा, बराबर है तुम्हें। तुम्हारे संथारा का समय है, बापू! समाधिमरण होगा। तुम्हारा समाधिमरण होगा। तुम्हारे योग्यता बराबर आ गयी है। ऐसा ब्यालीस सन्तों ने कहा। आहाहा! वह काल कैसा होगा? ब्यालीस आचार्य और साधु सल्लेखना के करनेवाले... आहाहा! वे वापस ब्यालीस के पास जाए, इतनी शक्ति भी सही। आहाहा! ऐसी शक्ति में पूछे कि मुझे अब अन्तिम स्थिति करनी है, संथारा करना है, देह छोड़नेवाला हूँ। प्रभु! मेरा बराबर है? तो ब्यालीस आचार्य स्वीकार करे कि बराबर है। आहाहा! उसका तो समाधिमरण होगा ही। आहाहा! उसका आत्मा स्वीकार करता हो और मुनि-आचार्यों के निकट स्वीकार कराया कि टाइम है-काल है, बापू! तेरा देह छूटने का समय ही है। वह समाधिमरण से छूटने का समय है। आहाहा!

उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण, देहत्याग व्यवहार से धर्म है।

देह का त्याग, वह तो व्यवहारधर्म है। देह तो पर है, जड़ है। आहाहा! निर्विकल्प ध्यान, वह निश्चयप्रतिक्रमण है। निश्चय सल्लेखना... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में झूले, देह छूटे, कदाचित न हो सके और विकल्प भी हो कि यह होता है, ऐसा जान, तथापि एकावतारी हो जाए। समाधिमरण हो जाए। आहाहा! व्यवहार से देह का त्याग व्यवहार से धर्म है।

निश्चय से-नव अर्थों में... नवतत्त्वों-पदार्थों में **उत्तम अर्थ आत्मा है;...** नव पदार्थ, नवतत्त्व में उत्तम अर्थ तो आत्मा है। देखा? संवर, निर्जरा, मोक्षपर्याय से भी उत्तम तो आत्मा है। आहाहा! आस्रव और बन्ध, पुण्य-पाप की तो बात कहीं रह गयी! परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष सच्चा, उनमें भी **उत्तम अर्थ आत्मा है;...** नवपदार्थों में **उत्तम अर्थ आत्मा है;...** आहाहा!

सच्चिदानन्दमय कारणसमयसारस्वरूप... प्रभु कैसा है? आहाहा! सच्चिदानन्द। सत् अर्थात् शाश्वत् रहनेवाला, चिदानन्द (अर्थात्) ज्ञान और आनन्द का जिसका त्रिकाल स्वरूप है। सत् भी त्रिकाल और ज्ञान और आनन्द उसका लक्षण भी त्रिकाल, ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! सभी आत्मायें सच्चिदानन्दमय प्रभु है। आहाहा! है-सत्। ज्ञान और आनन्द है। ध्रुव ज्ञान, ध्रुव और आनन्द ध्रुव, वह उसका लक्षण है। आहाहा! त्रिकाल आत्मा और त्रिकाल ज्ञान और आनन्द, यह जिसका लक्षण, वह उत्तम पदार्थ है। लो, आहाहा!

ऐसे **कारणसमयसारस्वरूप...** यहाँ यह लिया। **ऐसे उस आत्मा में...** कारणसमयसारस्वरूप त्रिकाल। कारणपरमात्मा कहो, कारणसमयसार कहो। मोक्षमार्ग नहीं, त्रिकाली। **कारणसमयसारस्वरूप ऐसे उस आत्मा में...** आहाहा! सच्चिदानन्दमय प्रभु, जिसे अन्दर श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र हुए हैं तथा देह छूटने की तैयारी, समाधिमरण से देह छूटने की तैयारी हो गयी है। आहाहा! उसे यह **सच्चिदानन्दमय...** प्रभु! **जो तपोधन स्थित रहते हैं,...** ऐसे कारणसमयसार प्रभु कारणपरमात्मा त्रिकाली में जो मुनि स्थिर रहते हैं। आहाहा! यह टीका तो मुनि ने की है। उसमें यह ९०० वर्ष (हुए)। अमृतचन्द्राचार्य के बाद। वस्तु तो एक ही है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' परमार्थ का पन्थ कोई दो-तीन होंगे?

समयसारस्वरूप, **कारणसमयसारस्वरूप, ऐसे उस आत्मा...** त्रिकाली कारणस्वरूप

ऐसा जो आत्मा ध्रुव। **उस आत्मा में जो तपोधन स्थित रहते हैं,...** जिन्हें तपरूपी धन है। आहाहा! इच्छानिरोधरूपी 'तपयन्ते इति तपः' तपरूपी लक्ष्मी है। यह धूल की नहीं। आहाहा! शोभता आत्मा, तपरूपी लक्ष्मी से शोभता अन्दर आत्मा। चकचकाहट करता ऐसा आत्मा अन्दर से प्रगट होता है। मुनि को धर्मध्यान-तपोधन... आहाहा!

जो तपोधन स्थित रहते हैं, वे तपोधन नित्य मरणभीरु हैं;... देखा? **मरणभीरु हैं;...** मरण से डरते हैं। कोई भी देह छूटने में मेरा यह नहीं। आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. भवभ्रमण से डरते हैं। आहाहा! एक भी भव करना, देह छोड़कर भव करना, उससे वे डरते हैं। आहाहा! इसलिए आत्मा में समाते हैं। आहाहा! **नित्य मरणभीरु हैं; इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं।** भवभ्रमण करने से डरते हैं। स्वरूप में रमणता करते हैं। आहाहा! **इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं।** आहाहा!

इसलिए अध्यात्मभाषा में,... आहाहा! **पूर्वोक्त भेदकरण रहित,...** अध्यात्मभाषा में उस भेदकरणरहित ध्यान है, जिसमें भेद नहीं है। व्यवहार तो नहीं परन्तु जिसमें भेद नहीं। आहाहा! ऐसे वचन, दिगम्बर सन्तों के वचन गजब है। तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है, ऐसा श्रीमद् में कहा है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, **पूर्वोक्त भेदकरण रहित,...** नीचे (फुटनोट में अर्थ) **भेद करना वह; भेद डालना वह।** भेद ही नहीं मिलता। अखण्ड आमा के अन्दर अनुभव में, अनुभव करता हूँ और अनुभव करनेवाला आत्मा, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है। आहाहा! अन्दर में एकमेक। अनुभव करनेवाला और अनुभव सब अन्दर एकमेक हो गया है। जरा भी भेद नहीं। आहाहा! देखो! यह निश्चयप्रतिक्रमण! यह निश्चय समाधिमरण! देह छूटने का काल तो आयेगा, देह छूटेगी। आहाहा! इस प्रकार से छूटेगी, तब छोड़ा कहलायेगा; नहीं तो छूटा नहीं। छूटेगी और दूसरी मिलेगी। यह छोड़कर फिर दूसरी मिलेगी। छूटा वह कि जिसे फिर से भव नहीं मिले। आहाहा! कठिन काम। देह छूटा उसे कहते हैं कि फिर से देह नहीं मिले—भव ही नहीं मिले, उसे देह छूटा कहा जाता है।

अध्यात्मभाषा में, पूर्वोक्त भेदकरण रहित, ध्यान और ध्येय के विकल्प रहित,... आहाहा! ध्येय आत्मा, ध्यान करनेवाली पर्याय। ध्यान वह पर्याय है और उसका ध्येय, वह द्रव्य है, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं अब। आहाहा! कहा न? **ध्यान और ध्येय के विकल्प**

रहित, निरवशेषरूप से... कुछ बाकी रखे बिना **अंतर्मुख जिसका आकार है...** आहाहा! बाहर का कुछ रखे बिना अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द में, अनुभव में मस्त हो गया है। बाहर का कोई भी विकल्प उसे है नहीं। आहाहा! यह पंचम काल के मुनि कहते हैं। पंचम काल के श्रोता को ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा हो सकता है तो ऐसा कहते हैं। भले कोई एक-दो भी निकले परन्तु हो सकता है, उसे यह कहते हैं। यह पंचम काल है तो यह नहीं हो सकता, यह हल्का काल है तो नहीं हो सकता, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा तो देखो! कठिन।

अवशेष **निरवशेषरूप से अंतर्मुख जिसका आकार है...** स्वरूप। कुछ भी भेद, पर के विकल्परहित अकेला अन्तर्मुख में आनन्द में एकाकार है। **ऐसा और सकल इन्द्रियों से अगोचर...** सकल इन्द्रियों से अगम्य, अतीन्द्रिय ज्ञान के ध्यान में मस्त है। **सकल इन्द्रियों से अगोचर निश्चय-परमशुक्लध्यान ही...** आहाहा! पंचम काल के जीव को भी शुक्लध्यान की बात करते हैं। देखा? शुक्लध्यान ऐसा होता है। **निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण है,...** उसे निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण होता है। आहाहा! पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रोता को भी ऐसी स्थिति (कहते हैं)। भले शुक्लध्यान हो नहीं सकता। परन्तु शुक्लध्यान ऐसा होता है, ऐसा ध्यान हो सकता है। आहाहा! वह शुक्लध्यान ऐसा होता है, ऐसी ध्यान की दशा हो सकती है, ऐसी यहाँ श्रोता से बात करते हैं। आहाहा! बहुत उग्र वचन! दिगम्बर सन्तों की उग्र वाणी! एक-एक वाणी में... आहाहा! अन्दर उग्रपना भरा है। **और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण...** पहले शुक्लध्यान की बात की। पहले उत्कृष्ट बात की। पश्चात् **और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान...** अब धर्मध्यान लिया। पहला शुक्लध्यान लिया था। उसे ध्येय बनाया। आहाहा! शुक्लध्यान से केवलज्ञान पाना है, करना तो यह है। आहाहा! यह न बन सके तो निश्चय उत्तमार्थ -प्रतिक्रमण-निश्चय उत्तमपदार्थ का प्रतिक्रमण **स्वात्माश्रित...** अपने आत्मा के ही आधार से, **ऐसे निश्चयधर्मध्यान...** लो। देखो! यह निश्चयधर्मध्यान। सवेरे शुद्धपरिणाम आया था न? शुद्धपरिणामरूपी धर्मध्यान। नहीं आया था? आहाहा! बन्ध का विचार किया करे, बन्ध के प्रकार का विचार किया करे, वह सब शुभधर्मध्यान है। शुभधर्मध्यान अर्थात् व्यवहारधर्मध्यान अर्थात् बन्ध का कारण। वह बन्ध का कारण है। शुभ है, वह पुण्य है और

बन्ध का कारण है। यह निश्चयधर्मध्यान निर्जरा का कारण है। आहाहा! धर्मध्यान तो उसे कहा और इसे भी कहा।

यह तो **स्वात्माश्रित...** निश्चय स्वात्माश्रित। आहाहा! पूर्ण आत्मस्वरूप का आश्रय। ऐसे **निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानमय होने से...** आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में सब विकल्प छोड़कर निर्विकल्प ध्यान में मस्त रहे। वे दोनों शुक्लध्यान और धर्मध्यान होने से, वे **अमृतकुम्भस्वरूप है;...** वह अमृतकुम्भस्वरूप है - अमृत का घड़ा है। आहाहा! पर्याय में अमृत बरसता है। आहाहा! अमृत का सागर पर्याय में उफन जाता है। उसका ध्यान करने से, पर के सब विकल्प छोड़ने से, त्रिकाली स्वआश्रय लेने से वहाँ अमृत का कुम्भ उछलता है। पर्याय में वह अमृतकुम्भ हुआ है। वस्तु तो अमृतकुम्भ है परन्तु पर्याय में अमृतकुम्भ हुआ है। आहाहा! ऐसी बातें।

छह काय की दया पालना, व्रत पालना, ऐसा तो कुछ आया नहीं इसमें। यह आया न (कि) ये सब विभाव-विकल्प छोड़ना। आहाहा! कठिन काम है, भाई! अनजाने को अकेला पकड़ा हो, उसे कठिन लगता है कि यह क्या कहते हैं? अभी तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं होती, आत्मा किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती। दया, दान के विकल्प हैं, वह पुण्य है, राग है, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! जितने व्यवहार प्रतिक्रमण कहलाते हैं, वह तो मात्र राग है। शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करते हैं, शाम-सवेरे सामायिक करते हैं, बस हो गया। बाईस-तेईस घण्टे अन्यत्र व्यतीत करते हैं। आहाहा!

एक को पूछने में आया कि तुम्हारे पास इतने सब पैसे हैं और तुम धर्मध्यान तो कुछ करते नहीं। कहे, एक घण्टे भक्ति करते हैं, भगवान की पूजा करते हैं। करते क्यों नहीं हैं? अब एक घण्टे जहाँ शुभभाव करे, उसे धर्मध्यान माने... आहाहा! वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं होती। वस्तु क्या है? आत्मा किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती। यह पूजा-भक्ति में घण्टाभर व्यतीत करे तो मानो हो गया धर्म। हम धर्म करते हैं न, एक घण्टे तो धर्म करते हैं न। आहाहा! एक घण्टे पाप करते हो। शुभभाव में एकत्वबुद्धि, कर्ताबुद्धि है। आहाहा! ऐसा काम कठिन पड़ता है।

अमृतकुम्भस्वरूप है; व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है। व्यवहारप्रतिक्रमण ज़हर है। आहाहा! जो शुभविकल्प उठे कि

यह मिच्छामि दुक्कडं, यह इच्छामि पडिक्कमणां यह सब विकल्प है, वह व्यवहार ज़हर है। अन्दर निर्विल्पता प्रगटे, वह अमृत है। आहाहा! निर्विकारी स्वरूप ही ऐसा अमृत का भण्डार, उसमें एकाग्र होने से अमृत का अनुभव होता है, यह निश्चयप्रतिक्रमण है। और राग का अनुभव होता है, वह ज़हर का प्रतिक्रमण है। ज़हर, ज़हररूप है। आहाहा! कठिन पड़े न?

व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण... शब्द ऐसा लिया है **व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण...** आरोप है न? निश्चय है, वहाँ व्यवहार का आरोप दिया। निश्चय उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वहाँ व्यवहार है, वह **व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय...** व्यवहार-धर्मध्यानमय **होने से विषकुम्भस्वरूप है।** उसे ज़हर कहा गया है। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)